आज तो हमारे पास बड़े-बड़े साधन मौजूद हैं, खबरें फौरन पहुँच जाती हैं। दुनिया के समाचार एक जगह बैठकर हम नित्य जान सकते हैं। पुराने जमाने में ये सब साधन नहीं थे, फिर भी सारी पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ मानव फैला हुआ था, करीब-करीब एक ही तरीके से उसका मन काम करता रहा।

एक साथ धर्म-संस्थापना की प्रेरणा

हम ढाई हजार साल पहले का जमाना लें, तो हमें मालूम होगा कि उस समय भारत में वैदिक, बौद्ध और जैन-धर्म की विचार-धारा चलती थी। समाज में खाने-पीने जैसी मामूली बातें तो चलती ही थीं, परंतु एक प्रेरणा ऐसी काम कर रही थी, जिसका मूल रूप भगवान् बुद्ध और महावीर बने। उन्होंने धर्म-संस्थापना की। उसी समय चीन में भी लाओत्से, कन्फ्यूशियस आदि 'ताओ' के बारे में विचार करते थे, जिससे वहाँ भी धर्म-संस्थापना हुई। याने वहाँ के लोगों को उस समय वैसी ही भूख लगी थी, यद्यपि चीन और हिंदुस्तान एक-दूसरे के बारे में बहुत कम जानते थे। उसी जमाने में ईरान और फिलस्तीन में हमें उसी प्रकार की प्रेरणा का दर्शन मिलता है। हम ईरान में जरथुस्त, मिस्र में मूसा और फिलस्तीन में ईसा को देखते हैं, जिन्होंने पारसी, यहूदी, ईसाई आदि धर्मों की स्थापना की। याने उन दो सौ, तीन सौ, पाँच सौ साल के अन्दर दुनिया के सभी देशों में धर्म-संस्थापना का कार्य होता दिखाई देता है।

आखिर सभी मानवों को धर्म-संस्थापना की यह एक ही

प्रेरणा कैसे मिली ? इसका जवाब यही हो सकता है कि व्यक्ति के मन की तरह समाज के मन को भी परमेश्वर से प्रेरणा मिलती है। जब मूसा काम कर रहे होंगे, तब उन्हें मालूम भी नहीं होगा कि दूसरी तरफ लाओत्से काम कर रहे हैं। उस समय एक तरफ की खबर दूसरी तरफ जाने में सैकड़ों बरस लगते थे। फिर भी एक अव्यक्त हवा-सी फैल जाती थी, जिसका कारण एक सर्वान्तर्यामी, सर्वप्रेरक परमेश्वर ही हो सकता है। यदि हमें 'परमेश्वर' शब्द पसंद नहीं, तो हम कह सकते है कि सब दुनिया की 'विवेक-शक्ति' (कान्शस) सबको समान प्रेरणा देती है। चाहे हम परमेश्वर कहें या विवेक-शक्ति, शब्द दो है, पर अर्थ एक ही है। परमेश्वर शब्द से हम अधिक गहराई में जाते हैं और विवेक-शक्ति कहने से उतनी गहराई में नहीं जा पाते। इसमें और दूसरा कोई अर्थभेद नहीं है।

एक साथ ध्यान-चिंतन की प्रेरणा

आगे चलकर हम आठ सौ या हजार साल पहले का जमाना लें। उस समय धर्म-संस्थापना की नहीं, बल्कि उपासना की, ध्यान की, चिंतन की याने मन की शक्तियों को एकाग्र करने और उनका विकास करने की प्रेरणा मिलती थी। उन्हें 'मिस्टि-सिज्म' (Mysticism) या भक्ति का युग कहा जा सकता है। उस समय कई संत पुरुष (मिस्टिक) पैदा हुए। सिर्फ भारत में ही नहीं, बल्कि दुनिया के बहुत सारे देशों में—जैसे मिस्र और इटली में भी—पैदा हुए। हर जगह उसी तरह का ध्यान, वही

चिंतन और वैसा ही तसव्वुर दिखाई देता है। याने मन के अंदर जो शक्तियाँ थीं, उनका आह्वान कर जिन्दगी को शक्तिशाली बनाना और उसका उपयोग दुनिया की भलाई के लिए करना उनका उद्देश्य था। यह आध्यात्मिक संशोधन-कार्य चल रहा था। तुलसीदास और सूरदास को तो उत्तर प्रदेशवाले अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने पर्यटन करके अपने विचार फैलाये। आज हम उनकी महिमा गाते हैं। वैसे ही संत दक्षिण भारत में भी और यूरोप में भी पैदा हुए, लेकिन हम उन्हें जानते नहीं।

उस जमाने में सभीको मानस-शास्त्र में संशोधन करने की प्रेरणा मिली थी। जैसे ढाई हजार साल पहले समाज की धारणा के मूल तत्त्व खोजने की इच्छा सबको हुई थी। सबको समान प्रेरणा होना, एक ही इच्छा से सबके मन जाग्रत होना अजीब घटना है। इधर के संतों को उधर के संतों की कोई खबर नहीं मिलती थी। फिर भी एक समान प्रेरणा ने सबको उठाया—सबको जगाया, सबको हिला दिया।

स्वतन्त्रता, समता और न्याय की भूख

ऐसा ही दृश्य दुनिया में लगभग सौ-डेढ़ सौ साल पहले हमने देखा। अब यातायात की सहूलियतें पैदा हो चुकी थीं। सब तरह की खबरें एक-दूसरे को बहुत कम समय में मिलने लगीं। दुनिया में समता, न्याय और स्वतंत्रता की बात बोली जाने लगी। हम देखते हैं कि जीवन में समता लानी चाहिए, हरएक को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, यह उद्देश्य आज सबको

प्रेरित कर रहा है। लेकिन यातायात के ये सब साधन होते हुए भी एक देश के आन्दोलन से ही दूसरे को प्रेरणा मिली है, ऐसा हम नहीं कह सकते। सबको अलग-अलग रूप से समान प्रेरणा मिली। उस समय समाज के बुनियादी तत्त्वों का संशोधन हो चुका था। बीच के काल में मन की शक्तियों का उन तत्त्वों को अमल में लाने के लिए कैसे उपयोग किया जा सकता है, इसका भी संशोधन हो गया। अब ऐसा समय आया, जब अपनी इच्छा से जो धर्म-संस्थापना हो चुकी और उसके अमल के लिए मन की शक्तियों का जो संशोधन हुआ, उसके आधार पर हम वे मूलभूत सिद्धान्त समाज-रचना के लिए काम में लायें, जिनसे आत्मा में मौजूदा शक्ति का साक्षात्कार होने की इच्छा हुई। सबमें एक ही आत्मा समान रूप से है, इस आध्यात्मिक तत्त्व को तो हमने प्राचीनकाल से मान ही लिया था, लेकिन अब उस तत्त्व को जीवन में लाने की बात थी। उसे मानते हुए भी हमारे जीवन में आज तक सब प्रकार के भेद हैं, दर्जे हैं, छुआ-छूत आदि बातें भी हैं।

सबके अन्दर एक समान ज्योति है, इसकी खोज तो सारी दुनिया कर चुकी थी और उसके लिए मानसिक वृत्तियों का संशोधन भी हो चुका था। लेकिन अब ऐसा समय आया था कि जीवन में वह समता प्रत्यक्ष रूप में लाने की बात थी। हर जगह यही एक-सी भूख लगी थी। स्वतन्त्रता, समता और न्याय की बातें दुनिया के हरएक देश में फैली हुई थीं। यदि हम ठीक

ढंग से, बारीकी से और तटस्थ होकर देखें, तो हमें मालूम पड़ेगा कि हरएक देश में यह विचार स्वतन्त्र रूप से फैला। जिस तरह सवेरे-सवेरे अयोध्या का मुर्गा बाँग लगाता है और नागपुर का मुर्गा भी उसी तरह बाँग लगाता है, सूर्योदय के कारण दुनिया के सभी मुर्गों को समान प्रेरणा मिलती है। इसी तरह इस जमाने में भी ऐसी समान प्रेरणा सबको मिली। हाँ, आज एक बात हुई है, काल की गति बढ़ गयी है और कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसका मतलब यह है कि जो काम पहले दो सौ साल में होता था, अब वह पाँच वर्ष में होने लगा।

कांग्रेस के उद्देश्य

मैं और निकट आऊँ। हम साठ-सत्तर साल पहले की बात देखें, तो मालूम पड़ता है कि दुनिया के कई देशों में एक-सा काम प्रारम्भ हुआ। हिन्दुस्तान में कांग्रेस का काम प्रारम्भ हुआ, जिसमें देश के सभी प्रान्तों के लोग, सभी धर्मों के लोग और अंग्रेज तक शरीक थे। आजादी की इच्छा प्रकट करना कांग्रेस का उद्देश्य था। उसके पहले भी हिन्दुस्तान के लोगों को यह भूख थी। परन्तु पहले ऐसी अवस्था होती है कि बच्चा रोकर अपनी भूख प्रकट करता है। पर जब उसमें बोलने की शक्ति आती है, तो वह माँगता है। फिर बड़ा होता है, तो खुद रोटी बनाकर खा लेता है। मानव जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे वह अपने विचार का प्रकाशन उत्कट रूप से

और अधिकाधिक स्पष्ट करता जाता है। कांग्रेस के रूप में हमने वाणी द्वारा अपनी वही भूख प्रकट की।

आजादी हासिल करने के लिए हमारा अपना खास तरीका था और भगवान् की कृपा से हमें उसके लिए एक उचित नेता भी मिले थे। जुल्म से मुक्त होने की आजादी की ऐसी ही प्रेरणा उस समय दुनिया के सभी मानवों को मिली थी। उस समय कांग्रेस के मानी थे : आजादी, समता और उच्चता-नीचता का अभाव! ठीक उसी समय हम देखते हैं कि दूसरे देशों के सामने, जहाँ राजकीय आजादी का ऐसा मसला नहीं था, मजदूरों की समस्या आयी। इसीलिए यूरोप में मजदूरों को आजादी दिलाने का आन्दोलन शुरू हुआ। दुनिया के सब मजदूर एक हैं, सबको समानता का अधिकार है, इसलिए सबको मुक्ति मिलनी चाहिए—यह आंदोलन वहाँ चला। आज तो पहली मई को सर्वत्र 'मई-दिवस' (May-day) मनाया जाता है। मजदूर-आंदोलन और कांग्रेस की वृत्ति में कोई फर्क नहीं है। सिर्फ परिस्थितियों का फर्क है। परतंत्र होने के कारण हमने राजकीय आजादी को ज्यादा महत्त्व दिया। लेकिन हमारी आजादी की लड़ाई में हमारे और भी उद्देश्य थे। सब तरह की समानता, न्याय, स्त्रियों तथा हरिजनों की आजादी के प्रश्न, जैसी सभी बातें उसमें थीं। उन सबका प्रकाशन कांग्रेस के जरिये हुआ था। उधर मजदूर-आंदोलनों में भी ये ही बातें थीं।

हमारा आन्दोलन मजदूर-आन्दोलन

आज 'मई-दिवस' के निमित्त मैं कह रहा हूँ। मैंने आज जो काम उठाया है, वह भी मजदूर-आंदोलन ही है। जो सबसे कमजोर हैं, जो बेजमीन और बेजबान हैं, उनका यह आंदोलन है। अक्सर मजदूरों के आंदोलन शहरों में होते हैं। यूरोप में तो किसानों के भी आन्दोलन हुए हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में ज्यादातर शहरों में ही ऐसे आंदोलन हुआ करते हैं। गाँव के मजदूर अत्यंत असंगठित हैं। उनमें जाग्रति नहीं है। उन्हें शिक्षा मिलती नहीं। उनके पास सिवा खेती के दूसरा कोई धंधा भी नहीं है। और जिस खेती पर वे काम करते हैं, उसके वे मालिक नहीं हैं। वे तो खेती के मजदूर हैं, जो सबसे नीचे के तबके के और समाज की श्रेणियों में सबसे निकृष्ट हैं। उनका सवाल मैंने उठाया है। जो सबसे नीचे के स्तर के होते हैं, उनका सवाल उठाना ही 'सर्वोदय' का और 'अहिंसा' का तरीका है। क्योंकि जो सबसे अन्तिम है, उसे ऊपर उठाना चाहिए। फिर उसके बाद बाकी के भी ऊपर उठ जाते हैं। फिर उनसे ऊँचों के लिए स्वतंत्र आंदोलन करना नहीं पड़ता।

मुझ पर आक्षेप किया जाता है कि मैं सिर्फ नीचेवालों को ऊपर उठाने की बात करता हूँ। समुद्र-स्नान से सब नदियों के स्नान का पुण्य मिल जाता है। फिर नदियों में अलग स्नान करने की जरूरत नहीं पड़ती। उसी तरह यह काम है, बशर्ते कि वह करने का ढंग ऐसा हो, जिससे एक को लाभ और दूसरे

को हानि न हो। अगर हम ऐसा तरीका अख्तियार करते हैं, तो सारा-का-सारा समाज ऊँचा उठता है। सर्वोदय का, अहिंसा का तरीका ऐसा है कि जिससे बाकी के सब लोग स्वयं ऊँचे उठ जाते हैं। किसीने मुझसे पूछा था कि आप मध्यम श्रेणीवालों या शहर के मजदूरों के लिए क्या कर रहे हैं? उस समय मैंने मजाक में कह दिया था कि दुनिया के सब मसले हल करने का मैंने ठेका नहीं लिया है। लेकिन वह तो विनोद था। *'एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।'* इस तरह मैं तो एक वातावरण निर्माण करना चाहता हूँ, जिससे समता, न्याय, भूतदया और सहानुभूति की हवा फैल जाय तथा उससे बाकी के मसले अपने-आप हल हो जायँ। यदि न भी हों, तो केवल जरा-सा आंदोलन करके हल किये जा सकें।

भूदान की ओर देखने की अनेक दृष्टियाँ

मेरे काम की ओर देखने की अनेक दृष्टियाँ हैं। लेकिन मई-दिवस के निमित्त मैंने यह एक दृष्टि आपके सामने रखी कि मेरा आंदोलन मजदूर-आंदोलन है। मैं खुद अपने को मजदूर मानता हूँ। मैंने अपने जीवन के, जवानी के ३२ वर्ष, जो 'बेस्ट इयर्स' कहे जाते हैं, मजदूरी में बिताये। मैंने तरह-तरह के काम किये हैं, जिन कामों को समाज हीन और दीन मानता है—जिनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, यद्यपि उनकी आवश्यकता बहुत है—ऐसे काम मैंने किये हैं। जैसे : भंगी-काम, बढ़ई-काम, खेती आदि। आज गांधीजी नहीं हैं, इसलिए मैं बाहर निकला

हूँ। अगर वे होते, तो मैं बाहर कभी नहीं आता और आप मुझे किसी मजदूरी में मग्न पाते। कर्म से मै मजदूर हूँ, यद्यपि जन्म से ब्राह्मण याने ब्रह्मनिष्ठ और अपरिग्रही। ब्रह्मनिष्ठा तो मैं छोड़ नहीं सकता। किसी भी काम की ओर देखने की हरएक की अपनी अलग-अलग दृष्टि होती है। तुलसीदासजी ने लिखा है कि जहाँ राम खड़े हुए थे, वहाँ उन्हें देखनेवाले जिस तरह के लोग थे, उस तरह से उन्होंने राम की ओर देखा। *'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।'* जो काम व्यापक होते हैं, उनके अनेक पहलू होते हैं। इसीलिए उनकी ओर कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। मेरे काम से भूमि की समस्या हल हो सकती है। अन्न के उत्पादन में वृद्धि हो सकती है, न्याय बढ़ सकता है। ग्रामों का संगठन हो सकता है। राजकारण पर उसका अच्छा असर हो सकता है। लोगों मे धर्मभावना का विकास हो सकता है। लोगों की अविकसित और गुप्त धर्म-भावना को, दान और दया करने की वृत्ति को बाहर लाया जा सकता है। मेरे काम की ओर, धार्मिक कार्य और भारत की पद्धति के अनुकूल कार्य है, इस दृष्टि से भी देखा जा सकता है और इसे एक बड़ा भारी मजदूर-आन्दोलन भी कहा जा सकता है।

परमेश्वर की प्रेरणा से कार्यारम्भ

यह सब मैंने किया नहीं, मुझे करना पड़ा है। हैदराबाद के 'सर्वोदय-सम्मेलन' के बाद मे एक अहिंसक निरीक्षक के नाते

तेलंगाना गया था। वहाँ के आतंक को नष्ट करने के लिए सरकार सालाना पाँच करोड़ रुपया खर्च करती थी, फिर भी वह नष्ट नहीं हुआ था। इसलिए अहिंसा वहाँ कैसे काम कर सकती है, यह देखने के वास्ते मैं नम्र भाव से गया। मैंने वहाँ की परिस्थिति देखी और मुझे मानो सूचना मिली कि किसानों की समस्या हाथ में लेनी होगी। जो लोग खेती में मजदूरी करते हैं, परन्तु बेजमीन हैं, उनका प्रश्न उठाना होगा। मुझमें ताकत नहीं थी, फिर भी मुझे वह काम लेना पड़ा। नहीं तो मैं डरपोक साबित होता और धर्म को भूलता। मैंने सोचा कि जब परमेश्वर मुझे यह प्रेरणा दे रहा है, तब इस काम को पूरा करने की ताकत भी वही देगा। यही मानकर मैंने इस काम को उठाया। ईश्वर पर याने आप सब पर श्रद्धा रखकर मैंने यह काम किया है। जो परमेश्वर मुझे माँगने की प्रेरणा दे रहा है, वह आपको देने की देगा। वह एकतरफा नहीं करता, बल्कि व्यापक और सब सोचनेवाला है, ऐसा मेरा विश्वास है। यह अहिंसा का तरीका है।

हम सुपंथ लेंगे

दुनिया के कई देशों में कृषक-मजदूरों के भी आंदोलन चले, लेकिन भारत में किसीने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। सिर्फ कम्युनिस्टों ने तेलंगाना में उनकी ओर ध्यान दिया। बाकी तो सब शहर के मजदूरों के आन्दोलन हैं। दुनिया में हरएक ने अपने-अपने ढंग से इस सवाल को हल किया है। लेकिन उनका तरीका बेढंगा है। मैं उसे नहीं चाहता। मैं मानता हूँ

कि उससे न तो कभी दुनिया का भला हुआ और न होगा। मैं मानता हूँ कि भारत के लिए वे तरीके नुकसान पहुँचानेवाले हैं मेरी, हमारी या भारत की एक विशेषता है। मैं तो इन तीनों को एक ही मानता हूँ। हमारा अपना एक विशेष तरीका है। मुझे कल किसीने कहा कि जबर्दस्ती से जल्दी जमीन मिल सकती है। मैंने कहा कि मैं जबर्दस्ती नहीं चाहता। मेरा काम आहिस्ता-आहिस्ता चले, तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन वह मेरे तरीके से होना चाहिए, हिंसक तरीके से नहीं। मेरा तरीका अहिंसा का, सर्वोदय का और भारतीय संस्कृति का तरीका है। यदि घी के डब्बे को आग लगायी जाय, तो घी जल जाता है और वेद-मन्त्र के साथ यज्ञ में उसकी आहुति दी जाय, तो भी वह जलता है। दोनों में घी जलता ही है। लेकिन एक से भावना जल जाती और दुनिया खतम हो जाती है, तो दूसरे से भावना पावन हो जाती है। हिंसक तरीके से एक मसला हल करने से दूसरे मसले पैदा हो जाते हैं। हिंसक तरीके से नयी-नयी तकलीफें पैदा होती हैं।

हमने आजादी हासिल करने के लिए जो तरीका उठाया था, वह यहीं निर्माण हो सका, क्योंकि वह भारत की सभ्यता के अनुकूल था। उसके लिए हमें सुयोग्य नेता भी मिला था। वैसे ही विशुद्ध तरीके से हमें और भी सभी मसले हल करने हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि अग्निदेव, हमें सुपंथ से ले जाओ, बुरे रास्ते से नहीं—'*अग्ने नय सुपथा राये।*' हमें चाहे जिस रास्ते

लक्ष्मी नहीं चाहिए, बल्कि वह सुपंथ से चाहिए। कुरान में भी कहा गया है : *'इह्दिनस् सिरातल् मुस्तकीम, सिरातल् लजीन अन् अमत अलैहिम।'* याने हे भगवन् ! हमें सिर्फ सीधी राह चाहिए, गलत राह से हम मुकाम पर नहीं पहुँच सकते। कभी-कभी यह आभास होता है कि हम मुकाम पर पहुँच गये, परन्तु असल में 'जन्नत' में जाने के बजाय हम 'जहन्नुम' में पहुँच जाते हैं। इसीलिए हम सीधी राह से आदर्श की तरफ पहुँचना चाहते हैं।

क्षमता और समता में अविरोध

हमें केवल मजदूरों को अन्न-वस्त्र नहीं देना है। यह मसला केवल भौतिक मसला नहीं है। मेरी दृष्टि से तो कोई भी मसला केवल आर्थिक मसला हो ही नहीं सकता। यदि हम गहराई में पहुँचें, तो मालूम होगा कि भौतिक मसले आध्यात्मिक और नैतिक ही होते हैं। उसी तरह यह भी मसला आध्यात्मिक है। यदि हम कहें कि गरीब को समता चाहिए, न्याय चाहिए, तो जो हमारे विरुद्ध पक्ष में हैं, वे भी हमारी बात मन्जूर कर लेते हैं। वे भी विषमता की बात नहीं ही करते हैं। बल्कि यह कहते हैं कि जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े न होने चाहिए। जहाँ हम समता की बात करते हैं, वहाँ वे असमता की बात तो नहीं करते, पर क्षमता की बातें खड़ी करते हैं।

वे 'समता विरुद्ध असमता' नहीं कह सकते, क्योंकि असमता को कोई नहीं मानता। प्रकाश के सामने अन्धकार टिक नहीं सकता। राम के विरुद्ध रावण लड़ नहीं सकता। लेकिन अर्जुन

के विरुद्ध यदि भीष्म का नाम लिया जाय, तो युद्ध हो सकता है। अच्छे शब्द के विरुद्ध अच्छा शब्द लाकर ही युद्ध हो सकेगा। राम-रावण की लड़ाई एक अजीब बात है। यदि हम कहें कि सूर्य और अन्धकार की बड़ी भारी लड़ाई हुई, जिसमें अन्धकार के समूह सूर्य पर टूट पड़े और सूर्य-किरणों ने उन्हें नष्ट किया, तो यह केवल वर्णन ही होगा। क्योंकि सूर्य के उदय के साथ-साथ ही अन्धकार को नष्ट होना पड़ता है। इसी तरह राम का उदय होने के साथ ही रावण खतम हो जाता है। सूर्य के सामने अन्धकार टिक नहीं सकता। ठीक इसी तरह राम के सामने रावण टिक नहीं सकता और समता के सामने असमता टिक नहीं सकती। लेकिन जब हम समता के सामने क्षमता खड़ी करते हैं, तो युद्ध होना सम्भव है। क्षमता में विश्वास करनेवाले कहते हैं कि क्षमता के लिए जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े होने चाहिए। तो, भिन्न विचारवाले नया विचार प्रकट करते है कि हम ऐसी कुशलता से समता लायेंगे कि उसमें क्षमता भी होगी। जहाँ समता है, वहाँ क्षमता भी आयेगी : *'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।'*

मजदूरों के सवाल को एकांगी ढंग और हिंसक तरीके से हल करने की कोशिश करनेवाले कभी कामयाब नहीं हो सकते। उससे तो हानि ही होगी। मैं ऐसी कुशलता से यह काम करना चाहता हूँ कि समता की तो रक्षा हो सके, पर ऐसे ढंग से कि मजदूरों का दुःख नष्ट हो और क्षमता तथा दूसरे और भी गुण रहें।

पूँजीवादी समाज में कुछ मस्तिष्क, कुछ हाथ !

आज सारा भारत मजदूर बन गया है। भारतवासी बुद्धि का उपयोग करना नहीं जानते। लाखों को हमने शिक्षा से वंचित रखा है। ये सब धन, मान और ज्ञान से विहीन हैं। फिर उनमें क्षमता कैसे आयेगी ? आज गाँव में अच्छा बढ़ई भी नहीं मिलता। यदि चरखे का कोई नया 'मॉडल' बनाना हो, तो गाँव का बढ़ई नहीं बना सकता। उसके लिए हमें पाँच साल उसे तालीम देनी पड़ती है। हमारा कारीगर-वर्ग 'अनस्किल्ड' मजदूर है, जिसे न ज्ञान है, न प्रतिष्ठा और न ध्येय। पूँजीवादी समाज में कुछ तो ऐसे होते हैं, जो दिमाग का ही काम करते हैं और कुछ यन्त्र के समान काम करते है, जो अपनी अक्ल का उपयोग नहीं कर सकते। किसीको चाकू में छेद डालने का काम दिया जाय, तो वह रोज पाँच हजार चाकू में छेद डालता और जिन्दगीभर यही काम करता रहता है। वे लोग कहते हैं कि इस तरह काम दिया जाय, तो क्षमता और कुशलता पैदा होती है। वे मनुष्य-जीवन को सर्वाङ्गीण बनने ही नहीं देते। पूँजीवादी समाज में कुछ 'हेड्स' (मस्तिष्क) बनते हैं और कुछ 'हैण्ड्स' (हाथ)। जैसे : मिल हैण्ड्स, हेड मास्टर, हेड क्लर्क आदि। इसका मतलब यह है कि इधर सारे सिर-ही-सिर, चाहे वे सिरजोर क्यों न हों और उधर सारे हाथ-ही-हाथ ! उनका कहना है कि इससे

क्षमता आती है। सर्वाङ्गपरिपूर्ण मनुष्य उनकी दृष्टि से क्षमता के खिलाफ है।

सार्ववर्णिक धर्म

चातुर्वर्ण्य में भी कुछ लोगों ने ऐसी कल्पना कर रखी थी कि ब्राह्मण भंगी का काम नहीं करेगा। पर यह गलत है। चातुर्वर्ण्य का सच्चा अर्थ यही है कि चारों वर्णों में चारों वर्ण होते हैं; लेकिन एक की प्रधानता होती है और बाकी के गौण होते हैं। भगवान् कृष्ण युद्ध के समय केवल लड़ते ही नहीं थे, बल्कि घोड़े धोने का भी काम करते थे। उस समय उन्होंने यह नहीं कहा कि यह तो क्षत्रिय का काम नहीं है। जब अर्जुन का मोह निरास करने की बात आयी, तब उन्होंने वह भी काम किया। अर्जुन से यह नहीं कहा कि यह तो ब्राह्मण का काम है, इसलिए तुम अपनी शंका लेकर किसी ब्राह्मण के पास जाओ। कृष्ण भगवान् तो मौके पर ग्वाल बनते थे, मौके पर ब्राह्मण, मौके पर शूद्र। क्षत्रिय तो वे थे ही, इसलिए लड़ने का काम तो उन्हें करना ही पड़ता था। तो, चातुर्वर्ण्य में हरएक के लिए अपना-अपना काम होता है और वह उसे करना ही पड़ता है। लेकिन बाकी के काम भी वह करता है।

एक बार किसी गणित के प्रोफेसर से पूछा गया कि फैजाबाद स्टेशन कहाँ है? तो उसने कहा : मैं भूगोल नहीं जानता। अगर वह इस तरह कहता है, तो अच्छा नागरिक नहीं बन सकता। गणित का प्रोफेसर होते हुए भी उसे भूगोल

का इतना तो सामान्य ज्ञान होना ही चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है कि 'धर्मोऽयम् सार्ववर्णिकः।' सबके लिए समान गुण आवश्यक है, फिर भी हरएक के अपने-अपने वर्ण के अनुसार अलग-अलग गुण भी होते हैं। विशेषता कायम रखते हुए सबको परिपूर्ण मानव बनाना उसका उद्देश्य है। सबको मन, हाथ, सिर आदि सब अवयव दिये हैं; इसलिए सबको सभी काम करना चाहिए। फिर भी वह किसी एक काम को अधिक समय दे सकता है।

मालिक-प्रधान मजदूर, मजदूर-प्रधान मालिक

मैं चाहता हूँ कि मालिक और मजदूर का भेद मिट जाय। इसका मतलब यह नहीं कि हम मालिक की अक्ल का उपयोग नहीं करना चाहते। जो मालिक होगा, वह मजदूर भी होगा और जो मजदूर होगा, वह मालिक भी। कुछ तो मालिक-प्रधान मजदूर रहेंगे, जो हाथ का काम करते हुए भी दिमाग के काम को प्रधानता देंगे और कुछ मजदूर-प्रधान मालिक होंगे, जो दिमाग का काम करते हुए हाथ के काम को प्रधानता देंगे। बुद्धि-प्रधान शरीर-श्रम करनेवाले और श्रम-प्रधान बुद्धि का काम करनेवाले, ऐसी अवस्था समाज में होनी चाहिए। अगर भगवान् यह नहीं चाहता, तो कुछ को तो वह हाथ-ही-हाथ देता और कुछ को बुद्धि ही। राहु और केतु के समान सबको अपूर्ण बनाता। पर उसने सबको परिपूर्ण बनाया है, इसलिए कि सब परिपूर्ण जीवन बिता सकें।

हम मालिक-मजदूर भेद मिटाना चाहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि मजदूर की श्रम-शक्ति या मालिक की व्यवस्था-शक्ति का हम विकास नहीं चाहते। हम दोनों की दोनों तरह की शक्तियों का विकास करना चाहते हैं। हम समता भी लाना चाहते हैं और क्षमता भी खोना नहीं चाहते।

फैजाबाद —विनोबा
१-५-'५२

सर्वोदयनिष्ठ मजदूर-संगठन : २ :

दुनिया में जो क्रांतिकारी कही जाती हैं, ऐसी साम्यवादी और समाजवादी विचारधाराएँ हैं। ये विचारधाराएँ ऐसा मानती हैं कि शोषित वर्ग को अपने शोषण को मिटाने के लिए उद्यम करना होगा, चाहे वह हिंसा से करे अथवा कानून से या वैधानिक रीति से करे। लेकिन वह अपने उद्धार के लिए, चाहे लेबर पार्टी के रूप में, चाहे सोशलिस्ट पार्टी या कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में, कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य करेगा। और कुछ नहीं, तो ट्रेड-यूनियन ही बनायेगा।

आज का मजदूर-आंदोलन

मजदूर-आंदोलन इंग्लैंड में सबसे पहले शुरू हुआ। वहाँ भी डेढ़ सौ वर्षों के बाद उसकी कितनी प्रगति हुई, यह हम सब लोगों के सामने है। अमेरिका में भी मजदूर-आन्दोलन है, परन्तु समाज का कोई बहुत क्रान्तिकारी परिवर्तन मजदूरों के आन्दोलन से अमेरिका में हो गया, ऐसा मैं नहीं मानता। रूस, चीन आदि में तो कहा जाता है कि मजदूरों का राज्य है, इसलिए वहाँ कोई अपना संगठन, अपना यूनियन बनाने का अधिकार उनको नहीं है। विषमताएँ वहाँ भी काफी पड़ी हुई हैं। वहाँ भी हमने बहुत कुछ हासिल कर लिया है, यह हम नहीं मानते।

कुमारप्पाजी भी उस दिन कह रहे थे कि अमेरिका में माइनारिटी-उदय (अल्पोदय) है और रूस में मेजारिटी-उदय (बहुजनोदय) है। सर्वोदय कहीं नहीं है ।

स्वार्थ की भावना गलत

अतः सर्वोदय के खयाल से हमें ऐसा लगता है कि अगर देश के मजदूर-नेता इस विचार को ग्रहण करें, तो मजदूर, जैसा कि मैं मजदूरों को जानता हूँ, आसानी से इसे ग्रहण करेंगे। अगर यह विचार उनके अन्दर पैठ जाय, तो डेढ सौ वर्षों में जो नहीं हुआ, वह १०-१५ वर्ष में हो सकता है। हमारा कहना यह है कि हम आज जब मजदूरों का संगठन करते हैं, तो उनसे यह कहते हैं कि तुम्हारा शोषण होता है । जितना पैदा होता है, उसमें तुमको इतना-इतना काम करना पड़ता है, तुमसे इतना काम लेना चाहिए। जितनी सुविधाएँ तुमको मिलनी चाहिए, उनकी अपेक्षा कहीं कम सुविधाएँ तुमको मिलती हैं— रहने के बारे में, शिक्षा के बारे में, अस्पताल के बारे में इत्यादि, इत्यादि हम उनसे कहते हैं। मजदूरों का संगठन इसलिए किया जाता है कि मजदूर अपने स्वार्थ के लिए संगठित होकर लड़ें। आज मजदूर रोटी के लिए काम कर रहा है और संगठन कर रहा है अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए। चाहे अहमदाबाद की मजदूर-महाजन-संस्था हो, चाहे कम्युनिज्मवादी ट्रेड-यूनियन हो, दोनों के पीछे यही भावना है। हमारा कहना है कि यह

भावना, गलत भावना है। इस भावना से लाभ भी अधिक होनेवाला नहीं है। अतः इस माने में भी वह गलत है।

मजदूर भाइयों से

हम मजदूरों से यह कहना चाहते हैं कि आप लोग पेट के लिए काम कर रहे हैं, ऐसा क्यों सोचते हैं? आप पेट के लिए काम नहीं कर रहे हैं, बल्कि आप तो समाज की सेवा कर रहे हैं। जैसे जवाहरलालजी, विनोबाजी अपनी-अपनी जगह से समाज की एक प्रकार की सेवा कर रहे हैं, वैसे ही आप भी अपने श्रम द्वारा समाज की सेवा कर रहे हैं। आप समाज के लिए कपड़ा बनाते हैं, अपने लिए तो नहीं बनाते हैं। समाज के लिए लोहा बनाते हैं, अपने लिए तो नहीं बनाते हैं। समाज की जो आवश्यकताएँ हैं, उनकी पूर्ति के काम में आप लगे हुए हैं। जब आप समाज की सेवा ही कर रहे हैं, तो फिर आपको ऐसा सोचना चाहिए कि हम सेवा भरपूर करें। आप यह कहें कि हम सेवा करते हैं, इसलिए देश को जितना कपड़ा चाहिए, वह हम बनायेंगे। इस तरह मजदूरों से हम कहते हैं कि आप समाज के सेवक हैं, ऐसा क्यों नहीं मान रहे हैं? यह क्यों नहीं कहते कि जितनी भी हमारी शक्ति है, उतनी सब हम लगायेंगे? इतनी सेवा करने के बाद आप यह नहीं कहें कि हमने इतनी सेवा की, तो हमें इतना मिलना चाहिए। यह माँग आपको नहीं करनी चाहिए। सेवा, सेवा ही है। माता की सेवा का कोई बदला नहीं होता। समाज की आपने अपनी शक्ति के मुताबिक सेवा की है, अतः

आपकी आवश्यकता के अनुसार आपको मिलना चाहिए। अगर आप काम करके दाम माँगेंगे कि भाई, हमने इतना किया, इतना दाम दो, तो फिर सर्वोदय क्या हुआ ?

जो कमजोर आदमी होगा, उसकी आवश्यकता अधिक होगी, तो समाज को उसको अधिक देना चाहिए। जो मजबूत आदमी होगा, उसकी आवश्यकता कम भी हो सकती है। ऐसी हालत में कमजोर आदमी कम काम करता है, इसलिए उसको कम मिले और मजबूत आदमी को ज्यादा मिले, इसका तो कोई मतलब ही नहीं हुआ। 'सरवाइवल आफ दि फिटेस्ट' (योग्यतम की विजय) की जगह हमारा विचार तो यह है कि जो कमजोर हैं, उनकी रक्षा हो। मजदूर से हम कहते हैं कि भाई, आपने सेवा की; अतः अपनी आवश्यकताभर समाज से पाने का आपको अधिकार है, परन्तु आप यह भी कहें कि हमारे जो दूसरे मजदूर भाई हैं, उनको अगर हमसे भी कम मिलता है, तो हम उनके लिए थोड़ा अपने में से ही छोड़ देते हैं। याने, उतना सम्पत्ति-दान में दे देते हैं दूसरे मजदूर भाइयों के लिए। हमको अधिक नहीं चाहिए।

शोषण में सहयोग नहीं

मान लीजिये कि कहीं हजार मजदूर हैं। वहाँ ऐसा एक विचारवान् नेता हो, जो उनको समझा दे और मजदूर उस भूमिका पर खड़े हो जायँ और कहें कि हम पूरी सेवा करेंगे।

आवश्यकताभर माँगेंगे और मन लगाकर शक्ति भर काम करेंगे। इसके बाद वे मालिकों से कहें कि हम नौकर आपके नहीं हैं, हम तो देश के नौकर हैं। हम आपके मुनाफे के लिए काम नहीं करते हैं। हम तो मुनाफे जैसी कोई चीज ही नहीं मानते। जैसे हम नौकर, वैसे आप नौकर। दोनों समाज के सेवक। आपके पास बुद्धि है, व्यापार करने की, उद्योग चलाने की। वह समाज को आप देंगे। आप हमारा शोषण करेंगे, तो क्या उस शोषण में हम आपके साथ सहयोग करते रहेंगे ? आपको भी यह शोषण छोड़ना होगा। जो मजदूर का नेता है, वह सर्वोदय का कार्यकर्ता भी है, केवल मजदूर-नेता नहीं। इसलिए सर्वोदय का वह कार्यकर्ता सिर्फ मजदूरों को ही समझायेगा, ऐसा नहीं। जहाँ वह मजदूरों को समझा रहा है, वहाँ मालिकों को भी समझायेगा। हम यह नहीं मान सकते कि मालिकों पर कुछ असर ही नहीं होगा।

कारखाना समाज का है

जब मालिक समझ जायँगे, तो मजदूर कहेंगे कि आपका रहन-सहन कुछ ऊँचा रहा है, इसलिए समाज से हम कहेंगे कि आपको थोड़ा अधिक मिले, समाज आपको अधिक दे, ऐसी हम सिफारिश करते हैं। लेकिन, यह कारखाना आपका नहीं है, यह पूँजी आपकी नहीं है, यह सब समाज का है।

सर्वोदय का मार्ग

इस तरह अगर मजदूर-आन्दोलन चले, तो देखिये उसका

क्या नतीजा होता है ? अगर एक कारखाने में मजदूरों ने ऐसा संकल्प किया और उसे प्रकट किया, तो मैं समझता हूँ कि अगर वह मालिक न भी माने, तो भी यह वातावरण बिजली की तरह फैलेगा। स्वार्थों की टक्कर से निकलकर मजदूर-आंदोलन सर्वोदय के रास्ते पर आयेगा।

दूसरों से हम कहते हैं कि आप भी सेवक बनें। लेकिन पहले खुद उस भूमिका पर खड़े होकर ही हम कह सकते हैं। इस तरह मजदूर जब स्वयं अपनी मालकियत की भावना छोड़ते हैं, तब दूसरों से मालकियत की भावना को छोड़ने को कहते हैं और एक नैतिक भूमिका पर खड़े होकर मांग पेश करते हैं, तो मेरा खयाल है कि इनकी मांग "इररेसिसटेबल्" होगी। इनकी मांग ऐसी होगी, जिसको कि कोई रोक नहीं सकेगा। और यदि कोई रोके, तो आप कह सकते हैं कि यह जो शोषण और मुनाफाखोरी आप कर रहे हैं, वह पाप है। हमारा इसमें कोई स्वार्थ नहीं है। इसलिए इस पाप के हम भागी नहीं बन सकते। इस पाप में हमारा सहयोग नहीं। हड़ताल की तो बात हम नहीं जानते, लेकिन हम सहयोग नहीं करेंगे। कारखाना हमें दीजिये, हम उसे देशभर के लिए चलायेंगे। लेकिन आपके मुनाफे के लिए हम क्यों चलायें ? ऐसी आवाज अगर मजदूर-आन्दोलन से निकले, मजदूरों के अन्दर इतनी शक्ति पैदा हो और अगर मजदूर-नेता इस विचार को समझायें, तो मेरा विश्वास है कि दस साल के अन्दर देश की पूँजीवादी रचना

का रूपांतर नयी रचना में हो सकता है। मैनेजमेंट (व्यवस्था) का भी सवाल धीरे-धीरे हल हो सकता है।

व्यावहारिक तरीका

हमें संपत्तिदान में एक कारखाना मिल रहा था, जो नहीं मिला। बाद में एक कारखाना मिल रहा था और वे कह रहे थे कि ट्रस्टीशिप के आधार पर इसको चलाओ। मालिक का परिवर्तन उतनी हद तक तो हुआ था। फिर उन्होंने पूछा कि मजदूरों का क्या होगा? उस पर से यह सारा विचार मन में उठा। जहाँ हम जाना चाहते हैं, पहुँचना चाहते हैं, वहाँ जाने के लिए यही व्यावहारिक तरीका है, दूसरा तरीका ही नहीं है। आप यह माँग क्यों करते है कि हमको इतना महँगाई-भत्ता मिले और तीन महीने का नहीं, चार महीने का बोनस मिले? फिर तो ट्रेड-यूनियन की तरफ से आप यह माँग कीजिये कि "सारी सम्पत्ति ही दे दो, हम मजदूरों ने अपना सब कुछ दे दिया है। यह सम्पत्ति तुम्हारी नहीं है, तुम उसके ट्रस्टी बनो। समाज की सेवा करो।" मजदूर अपने स्वार्थ का विसर्जन करे, फिर सामाजिक और नैतिक दबाव पड़ेगा। जब क्रांतिकारी वातावरण पैदा होगा, तो मालिक भी छोड़ सकते हैं और छोड़ेंगे ही, ऐसा मुझे लगता है।

पूँजीपति और मजदूर, दोनों ट्रस्टी बनें

बापू ने किशोरलाल भाई से, नरहरि भाई से, और लोगों से, ट्रस्टीशिप की परिभाषा बनाने के लिए कहा था। **वह परिभाषा**

बनी थी और वह 'हरिजन' में छपी थी। उस परिभाषा को मान-कर कुछ पूँजीपति घोषणा करनेवाले थे कि हम ट्रस्टीशिप के आधार पर काम करेंगे। बापू तो चले गये, लेकिन वे लोग तो आज भी देश में होंगे। एक भी पूँजीपति ऐसा मिले, जो अपने लिए कहता है कि मैं इस रूप में ट्रस्टी बनूँगा—हम और मेरे साथ मजदूर भी ट्रस्टी बनें। तब तो मजदूर को भी ट्रस्टी बनना ही है। उसके पास श्रम करने की जो शक्ति है, वह उसे समाज से मिली है। किसीने कपड़ा बनाया, किसीने गेहूँ पैदा किया, किसीने चावल पैदा किया—यह सब उसने समाज से और समाज के लिए पाया है। मजदूर ने अन्न खाया, उससे श्रम करने की शक्ति उसमें पैदा हुई। विद्या भी जो उसके पास है, वह उसने समाज से ही पायी है। कुछ बुनाई सीखी, कुछ कताई सीखी, कुछ और टेक्निक (हुनर) उसके पास है। वह सब उसे समाज ने सिखाया है। इस तरह श्रम करने की शक्ति और हुनर, इल्म, समाज की दी हुई वस्तुएँ हैं। समाज की सेवा करना हमारा धर्म है, ऐसा मान करके वह चले।

बेजवाड़ा
१६-१२-'५५

—जयप्रकाश नारायण

ट्रस्टीशिप का क्रान्तिकारी विचार : ३ :

मुख्य प्रश्न यह है कि मजदूरों में सर्वोदय-विचार का प्रवेश किस प्रकार से हो ? सर्वोदय-विचार केवल पढ़े-लिखे लोगों के लिए या किसानों के लिए ही नहीं है; बल्कि एक सर्वाङ्गीण विचार है, जो जीवन के सब विभागों को छूता है। मजदूर आन्दोलन के लिए भी इसका उपयोग है।

दुनिया में लगभग १५० वर्षों से मजदूर-आन्दोलन चल रहा है। सर्वत्र लोक-तान्त्रिक मजदूर-संगठन खड़े किये गये हैं और उन्होंने मजदूरों की दशा सुधारने के लिए बड़ा उपयोगी काम किया है। काफी शक्तिशाली मजदूर-संगठन बने हैं। उनका समाज और सरकार पर भी प्रभाव पड़ा है। ब्रिटेन, अमेरिका और अन्य देशों में मजदूर-संगठन काफी व्यवस्थित ढंग से और वैज्ञानिक ढंग से आयोजित किये हैं। परन्तु अब तक जो परिणाम आये हैं, उन पर से यह कहा जा सकता है कि मजदूर-आन्दोलन एक सीमा तक प्रगति करके रुक-सा गया है। केवल मजदूरों के लिए सुविधाएँ प्राप्त करा देना मात्र इन संगठनों का लक्ष्य रह गया है। यदि सुविधाओं में व्यत्यय आता है, तो वे लोग हड़ताल इत्यादि का आश्रय लेते हैं। स्वयं के स्वार्थ-हित सुविधाओं को जुटाना मात्र इन प्रयत्नों का उद्देश्य रहा। इसमें समाज का परिवर्तन हुआ हो, मजदूरों के जीवन में परिवर्तन हुआ

हो, नये मूल्यों की स्थापना हुई हो, ऐसा नहीं लगता। अहमदाबाद में मजदूर-महाजन-संघ चलता है। काफी अच्छा संगठन है। परन्तु इस संगठन का ध्यान भी मजदूरों के लिए अधिक-से-अधिक सुविधाएँ प्राप्त करना ही रहा है। समाज-परिवर्तन, वर्ग-परिवर्तन की भावना उससे नहीं निकली। इसलिए आज समय आया है कि दुनिया के सब मजदूरों के संगठन का पुनर्विचार करें और देखें कि उनके सिद्धान्तों में कहाँ संशोधन करने की आवश्यकता है।

ट्रस्टीशिप का विचार

गांधीजी ने ट्रस्टीशिप का एक क्रान्तिकारी विचार दिया था। वह विचार सिर्फ पूँजीपतियों के लिए ही नहीं था। पूँजी के प्रति क्या दृष्टिकोण होना चाहिए और व्याज, किराया और लाभ के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए, यहीं तक वह विचार सीमित नहीं है। यह व्यापक विचार है, जो जीवन-व्यवहार के विविध पहलुओं को छूता है। ट्रस्टीशिप के विचार को कार्यरूप देने के लिए संपत्तिदान एक योजना है, एक कार्यक्रम है। इसलिए आवश्यकता है कि इस क्रान्तिकारी विचार को मजदूर समझें।

इस संदर्भ में मजदूर-संगठन का स्वरूप ही भिन्न हो जायगा। संपत्तिदान की भूमिका पर यदि मजदूर-आन्दोलन खड़ा होता है, तो वह समाज-परिवर्तन की दिशा में क्रान्तिकारी कदम हो सकता है। क्योंकि इस परिस्थिति में मजदूर अपने को केवल कारखाने का मजदूर नहीं समझेगा, वह पेट भरने के लिए काम नहीं करेगा। वह अपने को समाज का एक सदस्य

समझेगा और समाज के लिए काम करेगा। उसका काम देश-प्रेम की भावना से अनुप्राणित होगा। आज मजदूर और कारखानेदार, दोनों एक ही भूमिका पर खड़े हैं। दोनों जो कुछ कमाते हैं, उस पर अपना अधिकार समझते हैं। अन्तर इतना ही है कि एक अपनी बुद्धि से अधिक कमा लेता है और दूसरा मेहनत करने पर भी बहुत कम कमा पाता है। परन्तु मानसिक स्थिति दोनों की इस दृष्टि से समान है कि दोनों ही अपनी-अपनी कमाई पर व्यक्तिगत स्वामित्व जायज समझते हैं। मजदूर को आज पूँजीपति की इसलिए ईर्ष्या है कि वह अधिक कमा लेता है। दोनों स्वार्थ के संघर्ष में उतरते हैं। पूँजीपति विजयी होता है और मजदूर परास्त। इसलिए उसे स्वाभाविक ईर्ष्या होती है। अत्यधिक दरिद्रता का यह परिणाम है कि वह पूँजीपति की कमाई छीनना चाहता है। परन्तु यदि किसी मजदूर को अधिक मजदूरी दी जाय, तो वह अपने गरीब भाइयों को बाँट देगा, ऐसी अपेक्षा नहीं है। मैनेजर भी मजदूर ही होता है। उसको कितना अधिक मिलता है, परन्तु वह अपने गरीब भाइयों में बाँटकर समान मजदूरी नहीं लेता। यदि मजदूर-संगठन, मजदूरों को भाईचारा, सामाजिक भावना और एक-दूसरे के लिए त्याग करने के लिए तैयार कर सकें, तो फिर वास्तविक क्रान्ति हो सकती है, और जो समाज-परिवर्तन मजदूर-आन्दोलन १५० वर्ष में नहीं कर सका, मजदूरों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं ला सका, इस मार्ग के द्वारा १५ वर्ष ही में अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकता है।

ब्रिटेन में कितने दिन से आन्दोलन चल रहा है। मजदूर संगठन काफी प्रभावशाली है। राष्ट्रीयकरण भी कई कारखानों का हुआ है, परन्तु मजदूरों की स्थिति में क्या अन्तर आया ? मजदूरों की वही स्थिति है। वही असमानता है। इसलिए आज मजदूरों में राष्ट्रीयकरण के प्रति कोई उत्साह नहीं रह गया।

समानता का नारा

समानता हो, यह मजदूर-आन्दोलन का प्रमुख नारा है। परन्तु मैं देखता हूँ कि मजदूर लोग स्वयं भी समानता पसंद नहीं करते। आज किसी भी कारखाने के मजदूर लोग इस बात के लिए तैयार नहीं हैं कि जो कुछ उन्हें मिलता है, वह एक स्थान पर एकत्र कर आपस में समान विभाजन कर लें। इसलिए आज मजदूर-संगठनों को चाहिए कि वे पहले मजदूरों में परस्पर समानता स्थापित करने के लिए प्रयत्न करें और इसके लिए मनोभूमिका तैयार करें। यदि यह एक बार भी हो सका तो पूँजीपति, जो बहुत ऊपर जाकर बैठा हुआ है, उसे मजदूरों के साथ समान धरातल पर आने में देर न लगेगी। क्योंकि उस समय मजदूर स्वार्थ-भावना से प्रेरित नहीं होगा; बल्कि उसकी नैतिक शक्ति इतनी बढ़ी हुई होगी कि पूँजीपति को इस शक्ति के सामने झुकना ही होगा। आज तो भावना की दृष्टि से मजदूर भी पूँजीपति ही है। क्योंकि वह भी पूँजीपति ही बनना चाहता है। क्रान्ति का नारा मजदूर लगाता है। इसलिए पहले मजदूरों को अपने

जीवन में यह क्रान्ति करनी चाहिए। मजदूर-संगठनों को अब इस प्रकार के रचनात्मक दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। वर्ग-संघर्ष की अपेक्षा वर्ग-निराकरण के लिए पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ानी चाहिए।

मजदूर-महाजन और अन्य मजदूर-संगठन इस दिशा में कदम बढ़ायें। इसके विविध पहलुओं पर विस्तार से सोचें और अपने मन्तव्य जाहिर करें। गांधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' का जो विचार दिया है, उस पर मजदूर-आन्दोलन को संगठित करने का अवसर संपत्तिदान-आन्दोलन ने उपस्थित किया है। इसे खुले दिमाग से सोचें। हमारा तो विश्वास है कि यदि इस सामाजिक दर्शन में मजदूरों की श्रद्धा जमायी जा सके कि जो कुछ शक्ति उनके पास है, वह समाज की देन है, इसलिए जो कुछ उनके पास है, उसको समाज को समर्पण करना है, शक्तिभर काम करना है और आवश्यकताभर लेना है, तो सर्वोदय की दिशा में बहुत बड़ी क्रान्ति होगी।

कांचीपुरम् —जयप्रकाश नारायण

२६-५-'५६

पहली बार : १५,०००] फरवरी, १९५७ [मूल्य : दो आना

प्रकाशक : अ० वा० सहस्रबुद्धे, मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ, वर्धा

मुद्रक : प्यारेलाल भार्गव, राजा प्रिंटिंग प्रेस, कमच्छा, वाराणसी १